श्रीहरिः

गीता पढ़नेके लाभ



लेखक-

जयदयाल गोयन्दका

मूल्य पन्द्रह पैसे

॥ श्रीहरिः ॥

गीता पढ़नेके लाभ



लेखक—

जयदयाल गोयन्दका

मुद्रक तथा प्रकाशक—मोतीलाल जालान, गीताप्रेस, गोरखपुर

[भारत-सरकारद्वारा उपलब्ध कराये गये रियायती मूल्यके कागजपर मुद्रित]

सं०	२०१६ से २०३१ तक	४५,०००
सं०	२०३५ छठा संस्करण	२०,०००
सं०	२०३८ सातवाँ संस्करण	२०,०००
		कुल ८५,०००

मूल्य दस पैसे

पता—गीताप्रेस, पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)

ॐ

श्रीपरमात्मने नमः

गीता पढ़नेके लाभ

श्रीमद्भगवद्गीता एक परम रहस्यमय अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सार्वभौम ग्रन्थ है। यह साक्षात् भगवान्‌की दिव्य वाणी है, उनके हृदयका उद्गार है। इसका महत्त्व बतलानेकी वाणीमें शक्ति नहीं है। इसकी महिमा अपरिमित है, यथार्थमें इसका वर्णन कोई नहीं कर सकता। शेष, महेश, गणेश, दिनेश भी इसकी महिमाको पूरी तरहसे नहीं कह सकते, फिर मनुष्यकी तो बात ही क्या है। इतिहास-पुराण आदिमें जगह-जगह इसकी महिमा गायी गयी है, किंतु उस सबको एकत्र करनेपर भी यह नहीं कहा जा सकता कि इसकी महिमा इतनी ही है; क्योंकि इसकी महिमाका कोई पार नहीं है।

गीता आनन्द-सुधाका सीमारहित छलकता हुआ समुद्र है। इसमें भावों और अर्थोंकी इतनी गम्भीरता और व्यापकता है कि मनुष्य जितनी ही

बार इसमें डुबकी लगाता है, उतनी ही बार वह नित्य नवीन आनन्दको प्राप्तकर मुदित और मुग्ध होता है। रत्नाकर सागरमें डुबकी लगानेवाला चाहे रत्नोंसे वञ्चित रह जाय, पर इस दिव्य रसामृत समुद्रमें डुबकी लगानेवाला कभी खाली हाथ नहीं निकलता। इसकी सरस और सार्थ-सुधा इतनी स्वादु है कि उसके ग्रहणसे नित्य नया स्वाद मिलता रहता है। रसिकशेखर श्यामसुन्दरकी इस रसीली वाणीमें इतनी मोहकता और इतना स्वादु भरा है कि जिसको एक बार इस अमृतकी बूँद प्राप्त हो गयी, उसकी रुचि उत्तरोत्तर बढ़ती ही रहती है।

गीता एक सर्वमान्य और प्रमाणस्वरूप अलौकिक ग्रन्थ है। एक छोटे-से आकारमें इतना विशाल योग-भक्ति-ज्ञानसे पूर्ण ग्रन्थ संसारकी प्रचलित भाषाओंमें दूसरा कोई नहीं है। इसमें सम्पूर्ण वेदोंका सार संग्रह किया हुआ है। इसकी संस्कृत बहुत ही मधुर, सरस, सरल और रुचिकर है। इसकी भाषा बहुत ही उत्तम एवं रहस्ययुक्त है।

दुनियाकी किसी भी भाषामें ऐसा सुबोध ग्रन्थ नहीं है। मनुष्य थोड़ा अभ्यास करनेसे भी सहज ही इसको समझ सकता है; परन्तु इसका आशय इतना गूढ़ और गम्भीर है कि आजीवन निरन्तर अभ्यास करते रहनेपर भी उसका अन्त नहीं आता, वरं प्रतिदिन नये-नये भाव उत्पन्न होते रहते हैं; इससे वह सदा नवीन ही बना रहता है।

गीतामें सभी धर्मोंका सार भरा हुआ है। संसारमें जितने भी ग्रन्थ हैं, उनमें गीता-जैसे गूढ़ और उन्नत विचार कहीं दृष्टिगोचर नहीं होते। गीताके साथ तुलना की जाय तो उसके सामने जगत्का समस्त ज्ञान तुच्छ है। गीता वर्तमान समयमें भी शिक्षित-अशिक्षित, भारतीय या भारतेतर सभी समुदायोंके लिये सर्वथा उपयुक्त ग्रन्थ है। गीता-जैसा विलक्षण एकता तथा समता सिखानेवाला अपूर्व उपदेश कहीं नहीं दिखायी पड़ता। गागरमें सागरकी भाँति थोड़ेमें ही अनन्त तत्त्व-रहस्यसे भरा हुआ ग्रन्थ अन्य नहीं देखनेमें आता।

गीताका उपदेश बहुत ही उच्चकोटिका है। गीतामें सबसे ऊँचा ज्ञान, सबसे ऊँची भक्ति और सबसे ऊँचा निष्काम भाव भरा हुआ है। गीताके उपदेशको देखकर मनुष्यके हृदयमें स्वाभाविक ही यह प्रभाव पड़ता है कि यह मनुष्यरचित नहीं है।

गीता एक उच्चकोटिका दर्शन-शास्त्र है। यह सिद्धान्त-रत्नोंका सागर है। इसके अध्ययनसे नित्य नये उच्चकोटिके भाव-रत्न प्राप्त होते रहते हैं। गीताका श्रद्धा-प्रेमपूर्वक गायन करनेसे इतना रस आता है कि उसके सामने सारे रस फीके हैं।

गीता मनुष्यको नीचे-से-नीचे स्थानसे उठाकर ऊँचे-से-ऊँचे परमपदपर आरूढ़ करानेवाला एक अद्‌भुत प्रभावशाली ग्रन्थ है। मनुष्य जब कभी किसी चिन्ता, संशय और शोकमें मग्न हो जाता है और उसे कोई रास्ता दिखायी नहीं पड़ता, उस समय गीताके श्लोकोंके अर्थ और भावपर लक्ष्य करनेसे वह निश्चिन्त, निःसंशय और शोकरहित होकर प्रसन्नता और शान्तिको प्राप्त हो जाता है।

गीतामें बहुत-से ऐसे श्लोक हैं, जिनमेंसे एक श्लोकका या उसके एक चरणका भी यदि मनुष्य अर्थ और भाव समझकर अध्ययन करे और उसके अनुसार अपना जीवन बना ले तो उसका निश्चय ही उद्धार हो सकता है। गीतामें मनुष्यमात्रका अधिकार है। भगवान् श्रीकृष्णने स्वयं कहा है--

ये मे मतमिदं नित्यमनुतिष्ठन्ति मानवाः।
श्रद्धावन्तोऽनसूयन्तो मुच्यन्ते तेऽपि कर्मभिः॥

(गीता ३। ३१)

'जो कोई मनुष्य दोषदृष्टिसे रहित और श्रद्धायुक्त होकर मेरे इस सिद्धान्तका सदा अनुसरण करते हैं, वे भी सम्पूर्ण कर्मोंसे छूट जाते हैं।'

यहाँ भगवान्‌ने 'मानवाः' कहकर यह स्पष्ट व्यक्त कर दिया है कि यह एक जातिविशेष या व्यक्तिविशेषके लिये ही नहीं है, इसमें मनुष्य-मात्रका अधिकार है। प्रत्येक वर्ण, आश्रम, जाति, धर्म और समाजका मनुष्य इसका अध्ययन करके अपना कल्याण कर सकता है।

आध्यात्मिक दृष्टिसे सारी मानवजातिपर ही गीताका बहुत प्रभाव पड़ा है। भगवान् श्रीकृष्णका हिंदूजातिमें अवतार हुआ था, इसलिये लोग गीताको प्रायः हिंदुओंका ही धर्मग्रन्थ समझते हैं, पर वास्तवमें यह केवल हिंदुओंके ही लिये नहीं है; ईसाई, मुसलमान आदि सभी धर्मावलम्बियोंके लिये और धर्मको न माननेवालोंके लिये भी समान रूपसे कल्याणका मार्ग दिखानेवाला प्रकाशमय सूर्य है। केवल भारतवासियोंके लिये ही नहीं, सम्पूर्ण पृथ्वीपर निवास करनेवाले सभी मनुष्योंके लिये भगवान् श्रीकृष्णने इस गीताका उपदेश किया है। मनुष्योंकी तो बात ही क्या है, देवता, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस आदि जितने भी बुद्धियुक्त प्राणी हैं, उन सभीके लिये यह कल्याणमय भण्डार है।

कोई-कोई ऐसा कहते हैं कि गीता तो केवल संन्यासियोंके लिये है, किंतु ऐसा समझना गलत है; क्योंकि अर्जुनने कहा था कि गुरुजनोंको न मारकर मैं भिक्षाका अन्न खाना कल्याणकारक

समझता हूँ (गीता २ । ५), किंतु भीख माँगकर खाना क्षत्रियका धर्म नहीं, संन्यासीका धर्म है । इससे सिद्ध हुआ कि अर्जुन गृहस्थाश्रमको छोड़कर—संन्यासाश्रम ग्रहण करके भीख माँगकर खाना अच्छा समझते थे, पर भगवान्‌ने उनकी इस समझकी निन्दा की और 'क्षत्रियके लिये धर्मयुद्धसे बढ़कर दूसरा कोई कल्याणकारी कर्तव्य नहीं है (गीता २ । ३१)' कहकर उन्हें धर्म-युद्धमें लगाया । अर्जुन गृहस्थी थे और गीताका उपदेश सुननेके बाद भी आजीवन गृहस्थी ही रहे । इससे गीता केवल संन्यासियोंके ही लिये है, यह सिद्ध नहीं होता बल्कि यही सिद्ध होता है कि गीता संन्यासी-गृहस्थी सभी मनुष्योंके लिये है ।

अतः गीताशास्त्र सभीके लिये इस लोक और परलोकमें कल्याण करनेवाला होनेसे यह सबके लिये सर्वोत्तम परम धर्ममय ग्रन्थ है । इसलिये सभी मनुष्योंको गीताका अर्थ और भाव समझते हुए अध्ययन करना चाहिये । गीताके अध्ययनसे

मनुष्यके शरीर, वाणी, मन और बुद्धिकी उन्नति होती है। इस लोकमें धन, जन, बल, मान और प्रतिष्ठाकी प्राप्ति एवं परलोकमें परम श्रेयमय परमात्माकी प्राप्ति होती है।

गीताके अध्ययन-अध्यापन और उसके अनुसार आचरण करनेसे अनेकों ऋषियोंको और अर्जुन, संजय आदि गृहस्थोंको उत्तम गति मिली। स्वामी श्रीशंकराचार्यजी, श्रीरामानुजाचार्यजी, श्रीज्ञानेश्वरजी आदि महानुभावोंको सर्वमान्य लौकिक, पारमार्थिक श्रेष्ठ पदकी प्राप्ति हुई एवं महात्मा गाँधी, लोकमान्य तिलक आदिको बड़ी प्रतिष्ठा प्राप्त हुई। अतः गीताके अध्ययन, अध्यापन और उसके अनुसार आचरण करनेसे मनुष्यको इस लोक और परलोकमें श्रेयकी प्राप्ति होती है।

कोई भी मनुष्य क्यों न हो, जिसकी ईश्वर-भक्तिमें और गीताशास्त्रको सुननेमें रुचि है, वही इसका अधिकारी है। ऐसे अधिकारी मनुष्यको गीता सुनानेवाला मनुष्य मुक्त हो जाता है। वह ईश्वरका

अत्यन्त प्यारा बन जाता है। भगवान्‌ने कहा है—

य इमं परमं गुह्यं मद्भक्तेष्वभिधास्यति।
भक्तिं मयि परां कृत्वा मामेवैष्यत्यसंशयः॥
(गीता १८।६८)

'जो पुरुष मुझमें परम प्रेम करके इस परम रहस्ययुक्त गीताशास्त्रको मेरे भक्तोंमें कहेगा, वह मुझको ही प्राप्त होगा—इसमें कोई सन्देह नहीं है।'

न च तस्मान्मनुष्येषु कश्चिन्मे प्रियकृत्तमः।
भविता न च मे तस्मादन्यः प्रियतरो भुवि॥
(गीता १८।६९)

'उससे बढ़कर मेरा प्रिय कार्य करनेवाला मनुष्योंमें कोई भी नहीं है तथा पृथ्वीभरमें उससे बढ़कर मेरा प्रिय दूसरा कोई भविष्यमें होगा भी नहीं।'

अतः हमलोगोंको गीताशास्त्रका अध्ययन-अध्यापन श्रद्धा-भक्तिपूर्वक बहुत उत्साह और तत्परताके साथ करना चाहिये।

गीताके अध्ययन करनेका फल और महत्त्व वर्णन करते हुए स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—

अध्येष्यते च य इमं धर्म्यं संवादमावयोः।
ज्ञानयज्ञेन तेनाहमिष्टः स्यामिति मे मतिः॥
(गीता १८।७०)

'जो पुरुष इस धर्ममय हम दोनोंके संवादरूप गीताशास्त्रको पढ़ेगा, उसके द्वारा भी मैं ज्ञानयज्ञसे पूजित होऊँगा—ऐसी मेरी मान्यता है।'

अर्थ और भावको समझकर गीताका अभ्यास करनेपर अन्य शास्त्रोंके अध्ययनकी आवश्यकता नहीं रहती। श्रीवेदव्यासजीने कहा है—

गीता सुगीता कर्तव्या किमन्यैः शास्त्रसंग्रहैः।
या स्वयं पद्मनाभस्य मुखपद्माद् विनिःसृता॥
(महा० भीष्म० ४३।१)

'गीताका ही भलीभाँति गान करना चाहिये अर्थात् उसीका भलीभाँति श्रवण, कीर्तन, पठन, पाठन, मनन और धारण करना चाहिये, फिर अन्य शास्त्रोंके संग्रहकी क्या आवश्यकता है? क्योंकि वह स्वयं पद्मनाभ भगवान्‌के साक्षात् मुखकमलसे निकली हुई है।'

यहाँ 'पद्मनाभ' शब्दका प्रयोग करके श्रीवेदव्यासजीने यह व्यक्त किया है कि यह गीता उन्हीं भगवान्के मुखकमलसे निकली है, जिनके नाभिकमलसे ब्रह्माजी प्रकट हुए और ब्रह्माजीके मुखसे वेद प्रकट हुए, जो सम्पूर्ण शास्त्रोंके मूल हैं। अतः संसारमें जितने भी शास्त्र हैं, उन सब शास्त्रोंका सार गीता है—'सर्वशास्त्रमयी गीता' (महा० भीष्म० ४३। २)। दुनियामें जो किसी भी धर्मको माननेवाले मनुष्य हैं, उन सभीको यह समानभावसे स्वधर्म-पालनमें उत्साह दिलाती है, किसी धर्मको निन्दा नहीं करती। इसमें कहीं किसी सम्प्रदायके प्रति पक्षपात नहीं है।

गीता सारे उपनिषदोंका सार है—

सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा गोपालनन्दनः।
पार्थो वत्सः सुधीर्भोक्ता दुग्धं गीतामृतं महत्॥

'सम्पूर्ण उपनिषद् गौके समान हैं, गोपालनन्दन श्रीकृष्ण दूध दुहनेवाले हैं। कुन्तीपुत्र अर्जुन बछड़ा हैं, महत्त्वपूर्ण गीताका उपदेशामृत ही दूध है और उत्तम बुद्धिवाले पुरुष ही उसके पीनेवाले हैं।'

गीता गङ्गासे भी बढ़कर है। शास्त्रोंमें गङ्गा-स्नानका फल मुक्ति बतलाया गया है; परन्तु गङ्गामें स्नान करनेवाला स्वयं मुक्त हो सकता है, वह दूसरोंको संसार-सागरसे तारनेमें असमर्थ है; किंतु गीतारूपी गङ्गामें गोते लगानेवाला स्वयं तो मुक्त होता ही है, वह दूसरोंको भी तार सकता है। गङ्गा तो भगवान्‌के चरणोंसे उत्पन्न हुई है, किंतु गीता साक्षात् भगवान्‌के मुखारविन्दसे निकली है। फिर गङ्गा तो जो उसमें जाकर स्नान करता है, उसीकी मुक्ति करती है; किंतु गीता तो घर-घरमें जाकर उन्हें मुक्तिका मार्ग दिखलाती है।

गीता गायत्रीसे भी बढ़कर है। गायत्री-जप करनेवाला भी स्वयं ही मुक्त होता है; पर गीताका अभ्यास करनेवाला तो तरन-तारन बन जाता है। मुक्तिका तो वह सदाव्रत खोल देता है।

गीताको स्वयं भगवान्‌से भी बढ़कर कहा जाय तो भी कोई अत्युक्ति नहीं होगी; क्योंकि स्वयं भगवान्‌ने कहा है—

गीताश्रयेऽहं तिष्ठामि गीता मे चोत्तमं गृहम् ।
गीताज्ञानमुपाश्रित्य त्रींल्लोकान् पालयाम्यहम् ॥
(वाराहपुराण)

'मैं गीताके आश्रयमें रहता हूँ, गीता मेरा उत्तम घर है, गीताके ज्ञानका सहारा लेकर ही मैं तीनों लोकोंका पालन करता हूँ ।'

गीता ज्ञानका सूर्य है । भक्तिरूपी मणिका भण्डार है । निष्काम कर्मका अगाध सागर है । गीतामें ज्ञान, भक्ति और निष्कामभावका तत्त्वरहस्य जैसा बतलाया गया है, वैसा किसी ग्रन्थमें भी एकत्र नहीं मिलता ।

आत्माके उद्धारके लिये तो गीता सर्वोपरि ग्रन्थ है ही, इसके सिवा, यह मनुष्यको सभी प्रकारकी उन्नतिका मार्ग दिखानेवाला ग्रन्थ भी है । जैसे—

शरीरकी उन्नतिके लिये गीतामें सात्त्विक भोजन बतलाया गया है—

आयुःसत्त्वबलारोग्यसुखप्रीतिविवर्धनाः ।
रस्याः स्निग्धाः स्थिरा हृद्या आहाराः सात्त्विकप्रियाः ॥
(१७ । ८)

'आयु, बुद्धि, बल, आरोग्य, सुख और प्रीतिको बढ़ानेवाले रसयुक्त, चिकने और स्थिर रहनेवाले तथा स्वभावसे ही मनको प्रिय---ऐसे आहार अर्थात् भोजन करनेके पदार्थ सात्त्विक पुरुषको प्रिय होते हैं ।'

भाव यह है कि इस प्रकारके सात्त्विक आहारके सेवनसे आयु, अन्तःकरण, बल, आरोग्य, सुख और प्रीति बढ़ती है; किंतु इसके विपरीत शरीरको हानि पहुँचानेवाले राजस-तामस भोजनका त्याग करनेके लिये निषेधरूपसे उनका वर्णन किया गया है (गीता १७ । ९–१० में देखिये)।

उत्तम आचरणोंकी शिक्षाके लिये शारीरिक तप बतलाया गया है—

देवद्विजगुरुप्राज्ञपूजनं शौचमार्जवम् ।
ब्रह्मचर्यमहिंसा च शारीरं तप उच्यते ॥

(गीता १७ । १४)

'देवता, ब्राह्मण, माता-पिता आदि गुरुजनों और ज्ञानीजनोंका पूजन, पवित्रता, सरलता,

ब्रह्मचर्य और अहिंसा——यह शरीरसम्बन्धी तप कहा जाता है ।'

वाणीको संयत और उन्नत बनानेके लिये वाणीका तप बतलाया गया है—

अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत् ।
स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङ्मयं तप उच्यते ॥
(गीता १७ । १५)

'जो उद्वेग न करनेवाला, प्रिय और हितकारक एवं यथार्थ भाषण है तथा जो वेद-शास्त्रोंके पठन-का एवं परमेश्वरके नामजपका अभ्यास है——वही वाणीसम्बन्धी तप कहा जाता है ।'

मनको उन्नत बनानेके लिये मानसिक तप बतलाया गया है—

मनःप्रसादः सौम्यत्वं मौनमात्मविनिग्रहः ।
भावसंशुद्धिरित्येतत् तपो मानसमुच्यते ॥
(गीता १७ । १६)

'मनकी प्रसन्नता, शान्तभाव, भगवच्चिन्तन करनेका स्वभाव, मनका निग्रह और अन्तःकरणके

भावोंकी भलीभाँति पवित्रता—इस प्रकार यह मनसम्बन्धी तप कहा जाता है।'

इसी प्रकार बुद्धिको उन्नत बनानेके लिये सात्त्विक ज्ञान और सात्त्विकी बुद्धिका वर्णन किया गया है—

सर्वभूतेषु येनैकं भावमव्ययमीक्षते।
अविभक्तं विभक्तेषु तज्ज्ञानं विद्धि सात्त्विकम्॥

(गीता १८। २०)

'जिस ज्ञानसे मनुष्य पृथक्-पृथक् सब भूतोंमें एक अविनाशी परमात्मभावको विभागरहित समभावसे स्थित देखता है, उस ज्ञानको तो तू सात्त्विक जान।'

प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च कार्याकार्ये भयाभये।
बन्धं मोक्षं च या वेत्ति बुद्धिः सा पार्थ सात्त्विकी॥

(गीता १८। ३०)

'हे पार्थ! जो बुद्धि प्रवृत्तिमार्ग और निवृत्तिमार्गको, कर्तव्य और अकर्तव्यको, भय और अभयको तथा बन्धन और मोक्षको यथार्थ जानती है, वह बुद्धि सात्त्विकी है।'

इसके विपरीत, राजस-तामस ज्ञानका अ० १८ श्लोक २१-२२में और राजसी-तामसी बुद्धिका अ० १८ श्लोक ३१-३२में त्याग करनेके उद्देश्यसे वर्णन किया गया है।

दुर्गुण, दुराचार, दुर्व्यसन मनुष्यकी उन्नतिमें महान् हानिकर हैं, अतः उनको आसुरी सम्पदा बतलाकर उनका सर्वथा त्याग करनेके लिये कहा गया है (देखिये गीता अ० १६, श्लोक ४ से २१ तक)।

इसके सिवा उन छब्बीस गुणों और आचरणोंको, जो मनुष्यकी उन्नतिमें मूल कारण हैं, सर्वथा उपादेय और मुक्तिके साधन बतलाकर उनका दैवीसम्पदाके नामसे वर्णन किया गया है—

अभयं सत्त्वसंशुद्धिर्ज्ञानयोगव्यवस्थितिः।
दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम्॥
अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शान्तिरपैशुनम्।
दया भूतेष्वलोलुप्त्वं मार्दवं ह्रीरचापलम्॥

तेजः क्षमा धृतिः शौचमद्रोहो नातिमानिता ।
भवन्ति सम्पदं दैवीमभिजातस्य भारत ॥

(गीता १६ । १–३)

भयका सर्वथा अभाव, अन्तःकरणकी पूर्ण निर्मलता, तत्त्वज्ञानके लिये ध्यानयोगमें निरन्तर दृढ़ स्थिति और सात्त्विक दान, इन्द्रियोंका दमन, भगवान्, देवता और गुरुजनोंकी पूजा तथा अग्निहोत्र आदि उत्तम कर्मोंका आचरण एवं वेदादि शास्त्रोंका पठन-पाठन तथा भगवान्के नाम और गुणोंका कीर्तन, स्वधर्मपालनके लिये कष्ट-सहन और शरीर तथा इन्द्रियोंके सहित अन्तःकरणकी सरलता, मन, वाणी और शरीरसे किसी प्रकार भी किसीको कष्ट न देना, यथार्थ और प्रिय भाषण, अपना अपकार करनेवालेपर भी क्रोधका न होना, कर्मोंमें स्वार्थ और कर्तापनके अभिमानका त्याग, अन्तःकरणकी उपरति अर्थात् चित्तकी चञ्चलताका अभाव, किसीकी निन्दादि न करना, सब भूत-प्राणियोंमें हेतुरहित

दया, इन्द्रियोंका विषयोंके साथ संयोग होनेपर भी उनमें आसक्तिका न होना, कोमलता, लोक और शास्त्रसे विरुद्ध आचरणमें लज्जा और व्यर्थ चेष्टाओंका अभाव, तेज, क्षमा, धैर्य, शौचाचार, सदाचार एवं किसीमें भी शत्रुभावका न होना और अपनेमें पूज्यताके अभिमानका अभाव——ये सब अर्जुन ! दैवीसम्पदाको लेकर उत्पन्न हुए पुरुषके लक्षण हैं।

न्याय प्राप्त होनेपर गीता युद्ध करनेकी ही आज्ञा देती है; किंतु राग-द्वेषसे रहित होकर समभावसे। भगवान् अर्जुनसे कहते हैं—

सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ।
ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि॥

(गीता २। ३८)

'जय-पराजय, लाभ-हानि और सुख-दुःखको समान समझकर उसके बाद युद्धके लिये तैयार हो जा, इस प्रकार युद्ध करनेसे तू पापको नहीं प्राप्त होगा।'

इसमें कैसी अद्भुत अलौकिक धीरता, वीरता, गम्भीरता और कुशलताका रहस्य भरा हुआ है।

फल, आसक्ति, अहंता, ममतासे रहित होकर संसारके हितके उद्देश्यसे कर्तव्य कर्म करना गीताका उपदेश है। गीतामें बताये हुए ज्ञानयोग, भक्तियोग, कर्मयोग—सब साधनोंका प्रधान उद्देश्य यह है कि सबका परम हित हो। इस उद्देश्यसे स्वार्थ और अभिमानसे रहित होकर सम्पूर्ण प्राणियों-के साथ त्याग, समता और उदारतापूर्वक प्रेम और विनययुक्त व्यवहार करना चाहिये। उच्चकोटि-के साधककी भी समता कसौटी है (देखिये गीता २ । १५, ३८, ४८)। एवं सिद्ध पुरुषकी भी कसौटी समता है (देखिये गीता ५ । १८-१९; ६ । ८-९; १२ । १८-१९; १४ । २४-२५) अतः सम्पूर्ण क्रियाओं, पदार्थों, भावों और प्राणियोंमें समभाव रखना—यह गीताका प्रधान उपदेश है।

गीतामें सभी बातें युक्तियुक्त हैं। गीताका सिद्धान्त है कि न अधिक सोये, न अधिक जागे, न अधिक खाय और न लङ्घन ही करे अर्थात् सब कार्य युक्तियुक्त करे, क्योंकि उचित भोजन

और शयन न करनेसे योगकी सिद्धि नहीं होती। इसीसे भगवान्‌ने कहा है---

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा॥
(गीता ६।१७)

'दुःखोंका नाश करनेवाला योग तो यथायोग्य आहार-विहार करनेवालेका, कर्मोंमें यथायोग्य चेष्टा करनेवालेका और यथायोग्य सोने तथा जागनेवालेका ही सिद्ध होता है।'

गीतामें सात्त्विक, राजस, तामस क्रिया, भाव और पदार्थका वर्णन किया गया है। उनमें सात्त्विक धारण करनेके लिये और राजस-तामस त्याग करनेके लिये कहा गया है।

यद्यपि उत्तम आचरण और अन्तःकरणका उत्तम भाव---दोनोंको ही गीताने कल्याणका साधन माना है, किन्तु प्रधानता भावको दी है।

इस तरह अनेक प्रकारके उत्तम-उत्तम रहस्ययुक्त एवं महत्त्वपूर्ण भाव गीतामें भरे हुए हैं।

हमलोग धन्य हैं, जो हमें अपने जीवनकालमें गीता-जैसा सर्वोत्तम ग्रन्थ देखने सुनने और पढ़ने-पढ़ानेके लिये मिल रहा है। हमें इस सुअवसरसे लाभ उठाना चाहिये—गीताका तत्परताके साथ श्रद्धा-प्रेमपूर्वक अध्ययन करना चाहिये।

गीताका अध्ययन करनेवालेको चाहिये कि वह उसे बार-बार पढ़े, हृदयङ्गम करे और मनमें धारण करे एवं उसके प्रत्येक शब्दका इस प्रकार मनन करे कि वह उसके अन्तःकरणमें प्रवेश कर जाय। भगवान्‌के शरण होकर इस प्रकार अध्ययन करनेसे भगवत्कृपासे गीताका तत्त्व-रहस्य सहज ही समझमें आ सकता है, फिर उसके विचार और गुण तथा कर्म स्वयमेव गीताके अनुसार ही होने लगते हैं। गीताके अनुसार आचरण हो जानेसे मनुष्यके गुण आत्मबल, बुद्धि, तेज, ज्ञान, आयु और कीर्तिकी वृद्धि होती है तथा वह परमपदस्वरूप परमात्माको प्राप्त हो जाता है।